International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 1104-2024, Accepted: 04-05-2024, Published: 28-05-2024
Volume 10, Issue 2, 2024, Page No. 11-13

कबीर के काव्य में 'लोक'

अमित कुमार सिंह[1], सुनीता रानी घोष[2]
[1] हिंदी विभाग, आगरा कॉलेज, डॉ भीमराव आम्बेडकर विष्वविद्यालय, आगरा, उत्तर प्रदेष, भारत
[2] प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, आगरा कॉलेज, डॉ भीमराव आम्बेडकर विष्वविद्यालय, आगरा, उत्तर प्रदेष, भारत

सारांश
कबीरदास जी निर्गुण संत साहित्य काव्य धारा के अग्रणी कवि हैं। उनकी रचनाओं में संत–भाव और काव्य दोनों ही विद्यमान हैं तथा दोनों ही एक दुसरे के पूरक हैं। कबीर के काव्य में भाषा के अनेक रंग दिखाई देते हैं। उन्होंने काव्यशास्त्रियों को लुभाने के लिए नहीं अपितु लोक मानस को उनकी ही भाषा में समझाने के लिए लिखा है। कबीर की वाणियों में आध्यात्मिकता भी है और भाषा की कुशलता भी। कबीरदास जी ने अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों को जनसामान्य की भाषा में सीधे सरल शब्दों में पिरोया है। कबीरदास जी देवत्त्व को मनुष्यत्व में ढाल कर लोक के समक्ष परोसते हैं। लोकतत्वों के प्रयोग से सराबोर उनके काव्य लोक के आखरी व्यक्ति तक पहुँचने का मार्ग हैं। अनपढ़, अकृत्रिम, सरल लोक मानस को वे अपना श्रोता मानते हैं। कबीर लोकमानस को समझाने के लिए हर प्रयास करते हैं। कभी वे दुल्हन बन जाते हैं और प्रियतम की प्रतीक्षा करते हैं तो कभी गौने की रीति का निर्वाह करते हैं, कभी वे सेज पर बैठ प्रियतम का इंतज़ार करते हैं तो कभी सती की तरह प्रियतम के साथ जल मरने की बात कहते हैं। लोक को लोक की भाषा में समझाने का प्रयास जो कबीरदास जी ने किया है वह कहीं और देखने को नहीं मिलता है।

मूल शब्दः लोकसाहित्य, लोकसंस्कृति, लोकपरम्परा, साखी, जन–चेतना, अकृत्रिम

'लोक' शब्द ऐसे जन समुदाय को इंगित करता है जो मानव जीवन की मूल प्रवृत्तियों एवं परंपराओं का वाहक है। यह जन समुदाय आडंबरहीन जीवन प्रणाली को अपनाता है और अत्यधिक बौद्धिक चेतना एवं सुसंस्कृत जन समुदाय से अलग अपना अस्तित्व रखता है। कबीरदास जी निर्गुण संत साहित्य काव्य धारा के अग्रणी कवि हैं। कबीरदास जी की रचनाओं में संत–भाव और काव्य दोनों ही विद्यमान हैं। एक का अस्तित्व दूसरे का विरोधी न होकर उसका पूरक है। कबीर की वाणियों में आध्यात्मिकता भी है और भाषा की कुशलता भी। भाषा के कुशल कारीगर होने के बाद भी कबीरदास जी ने अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों को जनसामान्य की भाषा में सीधे सरल शब्दों में पिरोया है। कहीं–कहीं तो कबीर की भाषा में अध्यात्म के गूढ़ रहस्य भी इतने सरल और सहज लगते हैं मानो वे लोक के किसी अत्यंत अनपढ़ एवं गंवार को समझाने का प्रयत्न कर रहे हों। ऐसा करते हुए कबीर समाज के हाशिये पर खड़े हर व्यक्ति को अपने काव्य से छूना चाहते हैं। अपने इस प्रयास में सफलता के लिए कबीर लोकतत्वों का प्रयोग करते हैं। कबीर का श्रोता अनपढ़, अकृत्रिम, सरल लोक मानस है; इस बात की पुष्टि कबीर की रचनाओं में ज्ञान पर दिए गए बल से भी सिद्ध होती है। कबीर इस लोकमानस का सच्चे गुरु की भाँति कहीं प्यार से समझाते हुए तो कहीं अत्यंत रूखे स्वरों में अपनी बात रखते हुए मार्गदर्शन करते हैं।

कबीर के काव्य में लोक

'लोक' शब्द एक ऐसे जन समुदाय को इंगित करता है जो मानव जीवन की मूल प्रवृत्तियों एवं परंपराओं का वाहक है। यह जन समुदाय आडंबरहीन जीवन प्रणाली को अपनाता है और अत्यधिक बौद्धिक चेतना एवं सुसंस्कृत जन समुदाय से अलग अपना अस्तित्व रखता है।लोक शब्द की सीमा गावों एवं कृषकों तक ही सीमित नहीं है। सही मायनों में 'लोक' शब्द एक क्षेत्र विशेष की पूरी जनता को प्रदर्शित करता है जिसमें विभिन्न सांस्कृतिक एवं आर्थिक समुदायों का सहअस्तित्व होता है।

डॉ. सत्येंद्र ने 'लोक' शब्द को परिभाषित करते हुए कहा है कि –''लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता तथा पांडित्य के अहंकार से शून्य है और एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।"1

वास्तव में लोक शब्द अंग्रेजी के 'फोक' शब्द का समानार्थी है। 'Folk' का शाब्दिक अर्थ 'असंस्कृत ज्ञान' से है। फोक शब्द लोकसाहित्य के अनगढ़ और असंस्कृत स्वरूप को दर्शाता है। 2

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने 'लोक' शब्द को परिभाषित करते हुए लोक के अंतर्गत उन सभी लोगों को माना है जो गांव एवं नगरों में फैले हुए हैं तथा परिष्कृत, सुसंस्कृत एवं रुचि संपन्न लोगों की अपेक्षा सरल एवं अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं। सिद्धांत कौमुदी के अनुसार लोक शब्द संस्कृत के 'लोकृ दर्शने' धातु से बना है। इसमें 'धंञ' प्रत्यय लगाकर 'लोक' शब्द बनता है। 'लोक दर्शने' का अर्थ है 'देखना'। लट् लकार अन्यपुरुष एकवचन में इसका रूप 'लोकते' होता है। इस प्रकार 'लोक' शब्द का मूल अर्थ हुआ – 'देखने वाला'। जो भी इस कार्य को करता है वह 'लोक' कहलाता है। 3

कबीर का साहित्य किसी पांडित्य पूर्ण समाज के लिए नहीं अपितु अकृत्रिम जीवन जीने वाले उन सरल भोलेभाले जनसमुदाय के लिए है जिन्हें धर्म के नाम पर बाह्याडम्बरों में फँसाया जा रहा था। कबीरदास जी ने लोक के लिए लोक की भाषा चुनी है और लोकजागृति के लिए काव्य अपनाया। कबीरदास जी ने शिष्ट एवं पांडित्यपूर्ण समाज को अपनी भाषा एवं काव्य से चमत्कृत करने के लिए नहीं रचा, अपितु उनका उद्देश्य तो लोक जागरण का था। लोक जागरण के लिए उन्होंने समाज के बीच रह कर लिखा इसीलिए कबीर जो भी लिखते हैं उसमें लोक विद्यमान है। कबीर लोक मानस के ह्रदय में भक्ति का धरातल तैयार करने के लिए लोक की भाषा एवं लोक तत्वों का सहारा लेते हैंद्य लोक अपने संस्कारों एवं संस्कृतियों का वाहक होता हैद्य वह अपने रीति रिवाज़ों से जुड़ा होता है और कबीर ने लोक के साथ एक्य स्थापित करने के लिए इन्हीं का सहारा लिया हैद्य लोक में विवाह, पति–पत्नी, माता–पिता आदि सम्बन्ध, प्रेम एवं प्रणय आदि पर आस्था की महत्ता को समझते हुए कबीर ने इन तत्त्वों को अपने काव्य में अवलंब बनाया हैद्य

लोक में मानव जीवन के सोलह संस्कारों में विवाह की महत्ता सर्वाधिक है। कबीर ने विवाह से जुड़े लोक कर्म जैसे विवाह,

विदाई, गौना (द्विरागमन), डोली आदि को अपने काव्य में मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति दी है।

दुलहनी गावहु मंगलचार,
हम घरि आयो हो राजा राम भरतार।.....

रामदेव संग भाँवरि लैहँ, धनि धनि भाग हमार।।
सुर तैतीतूं कौतिग आये, मुनिवर सहस अट्यासी।।
कहै कबीर हमै व्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी।।1। 4

इस पद में कबीर ने अपने को दुल्हिन मानते हुए अविनाशी राम को दूल्हा माना है। आत्मा और परमात्मा के मिलन को दर्शाने के लिए कबीर ने विवाह, भांवर एवं मंगलाचार आदि लोकरीतियों का सहारा लिया है। ऐसे ही विवाह की लोकरीतियों अर्थात गौने को दर्शाते हुए कबीर का एक और पद देखिये–

आये दिन गौने के हो मन होत हुलास
डोलिया उठाये बीजा बनवाँ हो जहाँ कोई न हमार 5

कबीर पूर्ण भक्त थे फिर भी लोक को भक्ति समझाने के लिए वे उनके सामने प्रेम परोसते हैं –

कबीरा यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारे हाथि करि, सो पैठे घर माहि।। 6

लोक मान्यताओं में सती अपने प्रियतम की एकनिष्ठ प्रेमिका होती है। उसका यह अनन्य प्रेम उसे प्रेम साधना के उच्चतम स्तर तक पहुंचा देता है जहाँ वह संसार के समस्त प्रलोभनों को अस्वीकार कर मात्र अपने प्रियतम से मिलन की आशा में चिता सजा कर चढ़ बैठती है। ऐसे ही प्रेम का उदाहरण देकर कबीर ने स्वयं को सती और परमात्मा को प्रियतम दर्शाया हैः

कबीर सती जलन कूँ नीकलो चितधारी एक विवेक।
तन मन सौंप्या पीव कूँ तब अंतर रही न रेख।। 7

लोक में व्याप्त सती के पति प्रेम की महत्ता को कबीर ईष्वर प्रेम में त्याग की महत्ता दर्शाने के लिए उपयोग किया है –

सती का कौन सिखावत है।
संग स्वामी के तन जारना जी।।
प्रेम को कौन सिखावत है।
त्याग माहीं भोग का पावना जी।। 8

प्रेम विरह में व्याकुल प्रेमियों द्वारा अपने साथी को पत्र लिखने की लोक रीति को दर्शाते हुए कबीर लिखते हैं–

यह तन जारौं मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ।
लेखणी करौं करंक की, लिखि–लिखि राम पठाउँ।। 9

घूंघट तथा परदे की लोकरीति को कबीर आत्मा और परमात्मा के बीच परदे की बात से जोड़ देते हैं। वे समाज को कहते हैं कि आत्मा और परमात्मा के बीच कोई घूंघट का पर्दा नहीं होना चाहिए।

रहु रहु रे बहुरिया घूंघट जिनि काढ़
घूंघट काढ़ गयी जिन आगे
उनकी गैल तोहि जिन लागे।। 10

कबीरदास जी लोक की रीति नीति में रचे बसे काव्य से लोक को अपना बनाना चाहते हैं। इसीलिए उन्होंने लोक से सिर्फ उसकी भाषा, शब्द–रूप और संस्कार ही नहीं लिए अपितु उनके अंधविष्वास जैसे भूत, प्रेत आदि, लोक की बातों में व्याप्त अतिरंजना एवं अतिश्योक्ति, उनके विष्वास और आस्था से पशु–पक्षियों का मानवीकरण आदि भी अपने काव्य में ग्रहण किया है। उदाहरण के लिए कबीर का यह पद देखिये जहाँ वे स्वयं को प्रभु का कुत्ता बताते हैं –

कबीर कुता राम का मुतिया मेरा नाउ।
गलै राम की जेवड़ी जित खैंचे तिउ जाउ।। 11

अतिशयोक्ति एवं अतिरंजना कबीर के काव्य में दृष्टव्य है। कहीं वे सातों समुद्र को मसि बना देते हैं और समस्त वनराइ की कलम तो कहीं वे धरती से आकाश की ओर उल्टी वर्षा की बात करते हैं। कबीर की उलटबासियां ऐसी ही अतिशोक्ति पूर्ण अभिव्यक्तियाँ हैं। लोक में व्याप्त लोकोक्ति उलटबासियों से साम्य भी रखती हैं। कबीर माया को डाकिनी बता कर समाज को माया के प्रति सचेत करते हैं। लोक कथाओं में व्याप्त भूत–पिशाच के भ्रम को अवलंब बना कर कबीर समाज को माया से डराते हैं। कबीर को पता है कि लोक को लोक के विष्वासों से ही समझाया जा सकता है –

कबीर माया डाकिनी, सब किसकी कौं खाई।
दाँत उपाणौ पापड़ी जे संतों नेड़ी खाए।। 12

कबीर के काव्य में लौकिक पक्ष की ओर उनका झुकाव देखते ही बनता है जहाँ वे लोक के सामाजिक पारिवारिक संबंधों को अपने काव्य में स्थान देते हैं। कहीं वे ईष्वर के प्रेम में स्वयं के साथ माता और पुत्र का सम्बन्ध दर्शाते हैं तो कहीं अपने राम की बहुरिया बन जाते हैं और सास, बहू, ननद और भाभी जैसे घरेलु संबंधों से लोक के हृदय में पैठते हैं।

हरी जननी मैं बालक तोरा।
काहे न अवगुण बक्सहु मोरा।। 13

उपर्युक्त पद में कबीर ने स्वयं को पुत्र और ईष्वर को जननी का पद दिया है। ऐसे ही एक पंक्ति में कबीर स्वयं को पुत्र और ईष्वर को पिता बताते हैं ''पिता हमरो बड़ई गोसाईं''। कबीरदास ने पारलौकिक संबंधों को लौकिक संबंधों की धरातल पर उतारने की कोशिश की है और इसके लिए वे सास–बहू की नोक–झोंक एवं व्यंग्यपूर्ण वार्तालाप भी चित्रित करते हैं –

सासु कहै काति बहू ऐसे
बिन कातै निस्तरीवाँ कैसे 14

ऐसे ही एक पद में कबीर स्वयं को प्रभु की प्रियतमा मानते हुए प्रभु रुपी ईष्वर को 'ननद के वीर' सम्बोधित करते हैं। ईष्वर के प्रति ऐसा भाव 'कांता भाव' की भक्ति में परिलक्षित होता है परन्तु ईष्वर रुपी पति के लिए ये उद्बोधन अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। ऐसा कहना सिर्फ कबीर जैसे साधक के लिए ही संभव है जो मन से वैरागी संत भी है और गृहस्थ भाव से लोक में विद्यमान भी।

कबीर की लौकिक दृष्टि कितनी बारीक थी इसका पता उनके काव्य में प्रयुक्त शब्दों से चलता है। एक पद में कबीर प्रेम की टीस दर्शाने के लिए दर्द, पीड़ा, दुःख जैसे शब्दों को नकारते हुए 'तलफै' शब्द चुनते हैं। इस 'तलफै' की टीस लोक की अपनी टीस सी उभर कर आती है –

तलफै बिन बालम मोर जिया।
दिन नहि चौन रात नहि निंदिया
तलफ तलफ के भोर किया 15

कबीर ने समस्त जग को अपनाया है और इसके लिए उन्होंने अपने काल खंड की लगभग सभी लोक भाषाओं के शब्द बड़ी सूक्ष्मता से प्रयोग किये हैं। वे खुद की बोली को पूरबी बताते हैं–

बोली हमरी पूरबी ताहि न चीन्है कोई।
हमरी बोली सो लखै, जो पूरब का होय।। 16

परन्तु कबीर के काव्य की भाषा पूरब में बिहारी, भोजपुरी, अवधी, पश्चिम में राजस्थानी, ब्रजी और खड़ी बोली तथा उत्तर में पंजाबी मिश्रित दिखाई देती है। कबीर अपनी समकालीन परिस्थियों के प्रति जागृत कवि हैं अतः उन्होंने उर्दू और फ़ारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया। तात्पर्य यह है कि कबीर लोक के किसी भी वर्ग को अछूता नहीं रखते और सबके बीच अपनी जगह बनाते हैं –

हमन है इश्क़ मस्ताना हमन को होशियारी क्या।
रहे आज़ाद या जग से हमन दुनिया से यारी क्या।। 17

कबीर जब जब लोक संबंधों को काव्य में उकेरते हैं तो उसके अनुरूप ही शब्द भी चुनते हैं। पति को उलाहना देने के लिए वे भोजपुरी, पूरबी और बिहारी का प्रयोग करते हैं और यदि इस प्रेम में विरह भी हो तो वे सूफियों की तरह फ़ारसी युक्त उर्दू अपना लेते हैं।

मोरी चुनरी में परि गयो दाग पिया।
पाँच तत्त्व की बनी चुनरिया, सोलह सै बंद लागे जिया।
यह चुनरी मेरे मैके ते आई, ससुरा में मनुआ खोय दिया। 18

कबीर के पदों में लोक के अन्य पहलू भी बखूबी उकेरे गए हैं। जीवन–मरण, विवाह आदि संस्कारों के साथ–साथ अंत्येष्टि और शव–दाह जैसी रीतियों का काव्य में प्रयोग किया गया है। पतंगबाज़ी एवं चौसर जैसे लोक मनोरंजन के खेल, स्त्रियों के वस्त्राभूषण एवं श्रृंगार से जुड़े लोकतत्त्वों की झलक भी कबीर के काव्य में दिखाई देती है। कृषि एवं अन्य व्यापार लोक–जीविका के साधनों को भी कबीर ने काव्य में अवलंब रूप में प्रयोग किया है।

निष्कर्ष

कबीर पारलौकिक सत्ता के गूढ़ रहस्यों को लौकिक धरातल पर उतार कर लोक के लिए सहज एवं सरल बनाते हैं। कबीर ने समाज के उस वर्ग से ईष्वर के तार जोड़ने के प्रयास किये हैं जो पांडित्य एवं शिष्टता के अभाव में कभी जुड़ ही नहीं पाए और उत्पीड़ित रहे। कबीर समाज को समाज की भाषा में कहते हैं और इसी कारण समाज के भीतर पैठ जाते हैं। उनकी दृष्टि अत्यंत सूक्ष्म है। कबीर दार्शनिक होते हुए भी निर्गुण को प्रेम के रस में पगा कर परोसते हैं। कबीर लोक से उनका राम नहीं छीनते अपितु लोक के राम को ईष्वर राम से जोड़ देते हैं। कबीर की वाणियां लोक मंगल की भावना से भरी हुई हैं। कबीर के सम्पूर्ण काव्य में लोक विद्यमान है एवं उनका सम्पूर्ण काव्य लोक को ही समर्पित है।

सन्दर्भ सूचि

1. डॉ सत्येंद्र– लोक साहित्य विज्ञान, लोकभारती प्रकाशन, 2019, पृ 30
2. मारिया लीच : डिक्शनरी ऑफ़ फोकलोर, फंक एंड वग्नल्स कंपनी, 1949, पृ 400
3. महापंडित राहुल सांकृत्यायन : हिंदी साहित्य का वृहत्त इतिहास – (भाग 16) पृ 1 प्रस्तावना
4. श्याम सुन्दर दास : कबीर ग्रंथावली, तक्षशिला प्रकाशन, 2019, पृ 59
5. योगेष्वर : कबीर समग्र, प्रचारक ग्रंथावली परियोजना, 2001 पृ 524
6. शिवकुमार मिश्र : भक्ति आंदोलन एवं भक्ति काव्य, लोकभारती प्रकाशन, 2015 पृ 77
7. माता प्रसाद गुप्त, कबीर ग्रंथावली, साहित्य भवन, इलाहबाद, 1985, पृ 115
8. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर, राजकमल प्रकाशन, 2019, पद 62, पृ 208
9. श्याम सुन्दर दास : कबीर ग्रंथावली, तक्षशिला प्रकाशन, 2019, पृ 54
10. श्याम सुन्दर दास : कबीर ग्रंथावली, तक्षशिला प्रकाशन, 2019, पृ 174
11. श्याम सुन्दर दास : कबीर ग्रंथावली, तक्षशिला प्रकाशन, 2019, पृ 63
12. श्याम सुन्दर दास : कबीर ग्रंथावली, तक्षशिला प्रकाशन, 2019, पृ 74
13. मोहन सिंह कर्की : कबीर(अनूदित), मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, 2013 पृ 30
14. राम किशोर शर्मा : कबीर ग्रंथावली, पद – 228 पृ 165
15. राम किशोर शर्मा : कबीर ग्रंथावली, 2006 पृ 95
16. राम किशोर शर्मा : कबीर ग्रंथावली 2010, पृ 90
17. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर, राजकमल प्रकाशन, 2019, पृ 127
18. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर, राजकमल प्रकाशन, 2019, पृ 151